Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र

सम्पादक।
डा० परस राम अग्रवाल

सत्संग हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

खोपड़ी में भंग पीने का राज़

शिवजी से किसी ने सवाल किया "आप परमेश्वर हैं, सारी दुनिया के मालिक हैं, आपके यहाँ साजो-सामान की कमी नहीं है फिर आप ख़ोपड़ियों के प्याले में भंग और धतूरे का रस निकाल कर क्यों पीते हैं ? अगर आपके पास प्याला न हो तो मैं चांदी और सोने के बर्तन हाजिर कर सकता हूँ।" शिवजी मुस्कराये, "भाई अगर तुम्हे जिन्दगी के हक का वारिस बनना है तो तुम्हें भी इस खोपड़ी के प्याले में भंग पीना पड़ेगा। अगर तुम मसनूई बर्तनों में कोई चीज रखकर खाते-पीते हो तो फिर इस वारिस का हक तुम्हें हासिल नहीं होगा। इस संसार में कोई अपने हृदय में रहता है, कोई गले में रहता है, कोई आँखों में रहता है, कोई जिस्म के किसी हिस्से में रहता है, मैं कहां रहता हूं ? अपने सिर में रहता हूँ। सिर ही असली चीज है। यह मुझे शुरू से ही प्राप्त है। मैं किसी दूसरे की खोपड़ी में भंग का रस नहीं पीता अपनी खोपड़ी में पीता हूँ। इसी से मुझे मस्ती, खुमार और मखवीयत हासिल होती है। जब तक कि सिर में रहने का राज़ (भेद) तुमको प्राप्त नहीं होगा तब तक तुम मखवीयत और मजसोवियत और समाधि को

नहीं समझ सकोगे। जिस योगी की समझ में कपाली बनने का राज नहीं आया वह किसी हालत में सच्चा योगी नहीं होता। ऐ सवाल करने वाले ! समता का स्थान तेरे सिर की शिखा में है। यहां से धार या सूत्र की शक्लों में निकल कर सारे शरीर में पहुँचती है। हजारों सूत, रग व रेशा, नस और नाड़ियों की शक्ल में इस शरीर के अन्दर फैले हुए हैं। जो सूत्रों में अटके रहते हैं वो शिखा या चोटी तक रसाई नहीं करते; शिखा और सूत का समझना हर योगी के लिए जरूरी है। तेरी चोटी शिखा है और इससे जो नस और नाड़ियों की धारें निकलती हैं वो पहले तीन सूतों की शक्ल में नीचे गिरती हैं फिर इनकी हजारों, लाखों और करोड़ों शक्लें हो जाती हैं। इनमें से तीन सूत या सूत्र मुख्य हैं। इन के नाम (1) पिंगला (2) इड़ा और (3) सुषुम्ना हैं। इन तीनों में से एक नाड़ी या एक सूत्र मुख्य है जिसे सुषुम्ना कहते हैं। यह चोटी से लेकर नीचे तक गई हुई है। जो इस सूत के राज को जानता है वह इसे पकड़ कर चोटी तक पहुंच जायेगा और मेरी तरह कपाली यानि सिर के अन्दर रहने वाला बनेगा और वह अपनी खोपड़ी के अन्दर अमृत का रस पायेगा और खोपड़ी में रख कर उसे पियेगा। यह कारण है कि मैं खोपड़ी के प्याले में भंग और धतूरे का रस पिया करता हूँ। अगर किसी को कपाली बनने का ख्याल है तो वह मेरे उदाहरण से फायदा उठाये, कपाली बने तब उसमें सच्ची समाधि आयेगी। जब तक यह बात न हासिल होगी तब तक पूरा और सच्चा योगी कभी नहीं बनेगा। लोग गले में तीन सूत का जनेऊ डाल लेते हैं और घमण्डी बन जाते हैं। नादानों को न शिक्षा की समझ है न सूत्र की समझ है। ये योंही संसार में जानवरों की तरह रहा करते हैं। डांवाडोल फिरते हैं। न उन्हें कोई गुरु मिलता है जो शिखा और सूत्र का भेद सिखाये, न रास्ते

सत्संग परम दयाल
फकीर चन्द जी महाराज

नई दिल्ली 27-9-71

शब्द

दुखियों दीनों पर दया हुई, भव पार किया गुरु प्यारे ने।
निर्धन को भक्ति विवेक युक्ति का, दान दिया गुरु प्यारे ने ॥
मद मान ने अति भरमाया था, माया के फाँस फँसाया था।
घट में जलाया अपनी दया से, ज्ञान-दीया गुरु प्यारे ने ॥
ज्योति के हिंडोले झूले थे, अपने आप को भूले थे।
चित देकर चिताया चिताउनी दे, अपना लिया सतगुरु प्यारे ने॥
चौरासी का खटका मिटा सारा, गुरु दया हुई अपरम्पारा।
घट फट गया था दे भक्ति का टांका, अब सिया सतगुरु प्यारे ने ॥
सुषमन में ज्योति जली जगमग, सुरत शब्द से प्रगट हुआ घट मग।
राधास्वामी ने तारने को नाम दिया, किया प्रसन्न हिया गुरु प्यारे ने।

यह शब्द जिन्होंने सुना है यदि वे मस्तिष्क रखते होंगे वह समझते होंगे। पहला प्रश्न यह है कि यहां दुःखी कौन है ? दुःखी वह है जिसे किसी वस्तु का अभाव खटकता है, जिसको आवश्यकता है किसी वस्तु की। जो मेरे पास रोते हुए आते हैं, इनमें कमजोरी होती है। इस न्यूनता को पूरी करने के लिए मनुष्य दुःखी होता है। मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि तू जो गुरु का गुण गाता रहता है बता यह सच्चा है या झूठा या ऐसे ही अज्ञान में फँस कर गाता रहता है ? तुम लोग सुनो, भक्ति क्या चीज है, जिसका वर्णन शब्द में आया है। तुम लोग समझते हो बाबा फकीर को

याद करना या इसके पाँव पर सिर रख देना भक्ति है ? नहीं ! राधास्वामी मत की वास्तविक भक्ति कुछ और ही है। वाणी में कहा गया है :—

भक्ति सुनाई सबसे न्यारी ।
भेद कतेब न ताहि विचारी ॥
सन्तन का वहां सदा विलासा ।
सत्त पुरुष चौथे पद वासा ॥
सो घर दरसाया गुरु पूरे ।
बीन बजे जहां अचरज तूरे ॥
तहां से दरसे अटल अटारी ।
अद्भुत राधास्वामी महल सँभारी ॥
सुरत हुई अति कर मगनानी ।
पुरुष अनामी जाय समानी ॥
आगे अलख पुरुष दरबारा ।
देखा जाय सुरत से सारा ॥
तिस पर अगम लोक इक न्यारा ।
सन्त सुरत कोई करै विहारा ॥

बाह्य गुरु ने ही मुझको वास्तविक भक्ति बतलाई है। इस सच्ची भक्ति का पता मुझको नहीं लगता था कि यह क्या है। मैं तो दाता दयाल जी के पाँव को चाटता रहता था। इनको खजूरें खिलाता रहता था। वह भी इतनी अधिकता में कि इनको दस्त लग जाते थे। एक समय चार दर्जन संतरे उन्हें खिला दिये जिससे उनको वमन होने लगा। मैं उन दिनों ऐसी ही भक्ति समझता था। उन्होंने मुझे समझाने के लिए गुरु पदवी दे दी, जिससे मेरी आँख खुल जावे। यहाँ पर एक पीले कपड़े वाला साधु उपस्थित है जो कहता है कि फकीर बाबा टप्पल में गये थे और उसे सत्संग कराया था। डा. जगजीत सिंह जो पहले पंजाब का फाइनेस मिनिस्टर

था इसका हाल ही में पत्र लंदन से आया है जो नैय्यर साहब को सुनाया गया है। वह कहते हैं कि बाबा फकीर ने रात को २ बजे दरवाजा खुलाया, उसे सत्संग कराया।

ऐ भारतवासियो! सम्प्रदायों के मानने वालो! मुझे इन बातों का कोई ज्ञान नहीं है। मैं यह कहता रहता हूँ कि मैं अनामी धाम से अवतार लेकर आया हूँ। मुझे जिन घटनाओं का ऊपर बर्णन किया है कुछ भी पता नहीं है। हां यह भाव कैसे होता है, इसके विषय में सुनो। यदि यह विश्वास कर लिया जाय कि पीले कपड़े वाला साधु जो कुछ कहता है सत्य है, या जो डा. जगजीत सिंह लिखता है वह सही है तो यह बातें प्रकट करती हैं कि बाबा फकीर का मस्तिष्क खराब हो गया है जो वहाँ नहीं रहने की कहता है किन्तु नहीं यह सब मन का खेल है। मैं यह उच्च स्वर में कहे जाता हूँ। क्यों? इसलिए कि आपको पता लग जाय कि वास्तविक भक्ति क्या है? इन घटनाओं के हो जाने से अन्त में क्या बनता है? क्या यही मानव का अन्तिम लक्ष्य है? नहीं, कदापि नहीं। मुझे अब ज्ञान हो गया कि यह सब अपने मन के खेल हैं और उसी तक सीमित हैं। अपने अन्दर राम या कृष्ण का दर्शन होना, हजूर सावन सिंह जी महाराज का आजाना, सन्त कृपाल सिंह जी महाराज का सत्संग कराना और फकीर चन्द जी महाराज का पहुँच जाना या और किसी इष्ट का प्रकट होना क्या है? यह सब माया है। अपने ही मन के व्यापार हैं या खेल हैं। यह सारा जगत् माया के प्रभाव में आकर धर्मों और पंथों तथा गुरुओं की लपेट में आकर इस प्रकार की बातें कर रहा है। इसका यह परिणाम हुआ कि अब यहाँ हजारों धर्म या सम्प्रदाय बन गये हैं। कोई कबीरपंथी है, कोई नानकपंथी है, कोई राधास्वामीपंथी है, कोई किसी पंथ का है। परिणाम यह हुआ कि मानव जाति कई भागों में बँट गई। मानव परस्पर

में द्वेष, ईर्ष्या, घृणा करने लगा, नित्य के लड़ाई-दंगे होने लग गये। इन साम्प्रदायिक आवेशों को समाप्त करने के लिए इस कलियुग में सन्त आये हैं। दाता दयाल आये हैं, कबीर साहिब आये हैं। इनके आने के बाद भी किसी महा-पुरुष ने सच्ची बात को स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा। सांकेतिक भाषा में ही काम लिया है। जैसी कि मेरे को गुरु आज्ञा है —

तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही॥

मैं रहस्य को प्रकट करके विश्व को बताये जा रहा हूँ, यदि यह रहस्य बुद्धिवादी मनुष्यों के मस्तिष्क में बैठ जाय तो हमारे धार्मिक द्वेषभाव उत्तेजना सब समाप्त हो जायें। तुम देखते नहीं हो कि गद्दियों की प्राप्ति के मुकद्दमे चल रहे हैं दयालबाग और स्वामीबाग में क्या इनसे यह प्रकट नहीं होता कि अज्ञान चारों ओर फैला हुआ है? तुम सोचो यह क्या हो रहा है?

जब एक सन्त मरने के निकट आता है तो एक पार्टी कहती है कि वह गद्दी पर आ जाय और दूसरी पार्टी इच्छुक है कि वह स्वामी बन जाय। क्या यही सन्त मत की शिक्षा है? धिक्कार है ऐसी शिक्षा को, किन्तु यह शिक्षा का प्रभाव नहीं है। मैं संसार के कल्याण को ध्यान में रख कर कहे जाता हूँ कि गुरु की कोई गद्दी नहीं होती —

यह भी काल का जाल, प्रगट घट में दयाल।

सन्त कृपाल सिंह जी अस्वस्थ हुए। लोगों ने पूछा कि अब गद्दी पर कौन आयेगा? वह बोले मूर्खो! मैं अभी चोला नहीं छोड़ रहा हूँ। इन गद्दियों की विचित्र दशा है। वाणी कहती है इस भव के पार कोई नहीं गया, किन्तु मैं कहता हूँ, गुरु ज्ञान ने मुझे भव के पार कर दिया है अब मोह, मद, लोभ, अज्ञान सब जाता रहा है। पीले कपड़े वाले साधु के कथनानुसार कि मैं टप्पल में गया और वहाँ सत्संग कराया

इसे तो मैं मन का खेल समझता हूँ। आजकल गुरुओं का प्रोपेगेंडा हो रहा है। वह तो ऐसी घटनाओं से लाभ उठाते है। कहते हैं कि यह क्या हो रहा है ? इस प्रकार के प्रचार से वह मान बड़ाई प्राप्त करते हैं। लोग कहते हैं कि बाबा बडी करनी वाला है। कभी लन्दन, कभी अमरीका पहुंचता और इन महात्माओं के चेले उनको चार चाँद लगा देते हैं और उन्हें आसमान पर उड़ाते हैं। यह क्या है ? यह सब माया है। सन्तों की शिक्षा वही सनातन धर्म की शिक्षा है। क्या यह सनातनी और क्या राधास्वामी ! दोनों माया के चक्कर में आ गये और भव के पार कोई नहीं जा सका है। मेरे विषय म भी आने वाले समय में लोग कहेंगे कि कोई सत्पुरुष आया था और सच्ची शिक्षा दे गया है। वह मनुष्य भव पार हो सकता है, जो दृश्यों को अपने अन्दर में केवल माया जानकर उनकी चिन्ता न करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। जो इनमें फँस गया वह लाख हाथ-पाँव मारे वह कभी भव के पार जा ही नहीं सकता है। चूंकि मैं इन बातों को माया समझता हूँ इसलिए इनको महत्त्व देने का प्रचार करने की आज्ञा नहीं देता हूँ। तुम सुनो ! वास्तव में यह हैं क्या ? संस्कार और प्रभाव हैं। यदि बाहर के प्रभाव व संस्कार मस्तिष्क में बैठ गये तो यह मौका पाकर अभ्यास के समय उभर आते हैं और मनुष्य को भ्रम में डालते हैं जिससे वह मार्ग से भटक कर माया के प्रभाव में आ जाता है। सच्चाई और तथ्य से एक रूप नहीं होता है। ऐसे अनुभव उसे पागल बना देते हैं। यह बूढ़ा प्रभुदयाल बैठा हुआ है। इसने मुझे खत लिखा कि इसे हृदय का रोग उठता है और वह मूर्च्छित हो जाता है। एक दिन अचानक अजगर आया और उसकी आत्मा को ले गया। चलते २ एक बड़ा सिंहासन दृष्टिगोचर हुआ, उस पर मैं बैठा था। मेरे सिर पर जवाहरात का मुकुट था जो जगमग-जगमग कर रहा था।

मैंने उस अजगर से पूछा तू क्यों प्रभुदयाल की आत्मा को ले जाता है ? यह सुनकर वह भागा और मैंने उस अजगर को मार दिया। इसने मुझे लिखा। यह सारे दृश्य क्यों दृष्टि में आते हैं ? मैंने किसी समय इससे कहा था कि मैं पहले और तू बाद में मरेगा। इस प्रकार की बातें गुरुओं को घमंडी बनाती हैं। वे मूर्खों पर ताव देते हैं और लोगों का धन बटोरते हैं। वे स्पष्ट वचन नहीं कहते कि उनको ऐसी घटनाओं का पता नहीं है। चुप्पी साधते हैं। इससे सुनने वालों को निश्चय हो जाता है कि वह सचमुच चेलों को कष्ट से उबारते हैं। और मैं हूँ कि पुकार कर कहता हूँ कि प्रभुदयाल की करनी उसके ही मन के कारण है जिसने यह सारा दृश्य जो इसने वर्णन किया है, रचा है। इसके अन्दर में ऐसे विचार पहले से ही गढ़े हुए थे जो समय पाकर उभर कर खड़े हुए।

कहा है —

ऋषी मुनी सब पिल रहे, इस मन की खानी।
ज्ञानी योगी भक्त उपासक, इन सब चक्कर खाया ॥

यह जो मन के विषय में लिखा है, वास्तव में सही है। इसके कारण कोई व्यक्ति अपने घर नहीं जा सका। तुम विचारो कि मैं क्या कह रहा हूँ ? मैं तो पाँचवें पद में बैठ कर बोल रहा हूँ। क्यों ? गुरु ऋण से मुक्त होने के लिए। उनकी आज्ञा है कि निबल, अबल, अज्ञानी जीवों की सहायता करते रहना। मैं तो सतत संसार के मनुष्यों की सेवा करता आ रहा हूँ, किन्तु मेरी सेवा अथवा ज्ञान की बात का अधिकारी कौन है ?

जो भवसागर से वास्तव में पार होना चाहते हैं और जिनका आत्मिक जगत् की ओर झुकाव है, केवल वही लोग मेरी बातों को पकड़ सकते हैं। दूसरे लोग मेरी बात को क्या समझेंगे ? वह इनका क्या सम्मान करेंगे ? दुनिया

उनकी कदर करती है।

"नाचें कूदें तोड़ें तान, दुनिया राखे उनका मान।"

मैं दु:खियों के लिये आया हूँ। मैं भी दु:खी रहता था, प्राय: रोया करता था। उस समय उस पवित्र आत्मा 'दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लालजी' ने मुझे अपनी छाती से लगाया था। उन्होंने मेरी अज्ञान की भक्ति को सम्भाला था। अब मैं उन बातों को स्मरण करके रोता हूँ कि मैंने दाताजी की जीवित अवस्था में क्या-२ भूलें कीं। एक दिन मैंने चार दर्जन सन्तरे एक ही समय में दाता दयाल जी को खिला दिये थे, जिससे उन्हे कष्ट हुआ था। खजूरों के दो पैकिट एक ही दम में खिला दिये थे। रात भर उनको अपचन के कारण दस्त आते रहे। अन्त में यह देखकर लज्जित हुआ। गुरु महाराज कहने लगे तेरी खजूरें मेरे लिए अमृत सिद्ध हुईं। मेरे पेट की सारी मलिनता उसने निकाल दी है। मैं अब उस पवित्र आत्मा की आज्ञा से इन दिनों सत्संग का कार्य करता रहता हूँ। नहीं तो मुझे कोई गरज नहीं थी कि व्यर्थ का प्रयास करूँ। इस अवस्था में भी आकर दाता के गुण गाता रहता हूँ इसलिए कि उन्होंने मुझे भव सागर से पार किया हुआ है। उनकी दया और उनके ज्ञान से मैं पार हुआ हूँ। वास्तव में मैं कोई गुरु नहीं और न मुझे कुछ आता है। यह सत्संग का काम उन्होंने मेरे अज्ञान को दूर करने के लिए दिया था। अब मैं अपनी बारी पर किस को ज्ञान दूं। मुझे तो कोई अधिकारी ही दृष्टिगोचर नहीं होता है। यदि मैं किसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित करूँगा तो वह लोगों को लूटेगा। मुझे सँभल कर कार्य करना है। तुम लोग किसी दस नम्बर के बदमाश को गुरु बना दो और प्रचार करदो कि वह करनी वाला इन्सान है। उसका रूप विश्वासियों को अवश्य प्रकट होगा। यह प्राकृतिक नियम है। रूप जो प्रकट होते हैं ये मन के विश्वास व श्रद्धा से

प्रकट होते हैं। इससे ऐसे गुरु भोले आदमियों को लूटते हैं।
मेरे पास मध्यप्रदेश से एक आदमी आया हुआ है। उसने कहा है कि अमुक चेले ने अमुक गुरु की भक्ति की जिस से चेले में सिद्धि शक्ति आ गई। गुरु ने उस चेले की स्त्री पर हाथ डाला जिसके कारण भांडा सारा फूट गया है। उस चेले को सिद्धि शक्ति गुरु की दया से नहीं किन्तु उसके अपने श्रद्धा व विश्वास से प्राप्त हुई थी। मैं दर्द दिल रख कर यह बातें तुमको स्पष्ट कहता हूँ। तुम लोग बचो इन नकली गुरुओं से। मेरे सत्संग कराने का वास्तविक उद्देश्य यही है कि तुम लोग अति सावधान होकर जीवन यापन करो। याद रखो किसी गुरु ने तुमको सिद्धि शक्ति नहीं देनी है। सिद्धि शक्ति का आना अपने विश्वास और श्रद्धा अभ्यास से है। मैं इन बातों को खूब जानता हूँ इसलिए मैं स्पष्ट वर्णन से काम लेता रहता हूँ। मैं यह भी समझता हूँ कि कोई व्यक्ति मेरे स्पष्ट वर्णन से मुझे भेंट नहीं देंगे या कम देंगे तो भी मेरा अन्दर यह आज्ञा नहीं देता कि भोले-भोले लोगों को सच्चाई न बताकर भटका दूं। मैं पैसे की कमाई के लिए नहीं आया हूँ। मैं तो अज्ञानी जीवों के उद्धार के लिए प्रकट हुआ हूँ—

"तुमको देख दुखी गुरु आए ।।"

तुम लोग सत्संग में आते हो। मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ कि सच्चाई कह जाऊँ। तुम अधिकारी तो हो नहीं। दाताजी ने कहा है—

"तुमको दुःखी देख आँखों से मन में दया समाई ।।"

मेरी भी यही गति है। गुरुदेव मेरे विषय में कह गये हैं—

'दुखी जीव को अग लगाकर ले जा गुरु के देसा।' तथा

" तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।"

किसी को भी मैं अब नाम दान नहीं देता किन्तु जो बात मैं कहता हूँ वही नाम दान है। दाता जी कहते हैं —

'हम में नहीं स्वारथ किंचित, लख लख करो प्रतीति।'

यदि मेरी वृत्ति स्वार्थ की होती तो मैं इस बड़े रहस्य का पर्दा-फास नहीं करता। ये महात्मा लोग इस रहस्य को न खोल कर ही रुपयों की थैलियाँ भर लेते हैं मेरी स्थिति इन महात्माओं से विपरीत है। मुझे धन से लगाव नहीं है इसी कारण मैं गुप्त भेद और गोपनीय रहस्य को प्रकट कर रहा हूँ। ऐसी ही मेरे गुरुदेव की आज्ञा थी कि मैं शिक्षा में परिवर्तन लाऊँ। डा० जगजीत सिंह लाखों रुपयों का स्वामी है। यदि मुझ में स्वार्थ होता और सच्चाई को छिपा रखता तो दूसरों की तरह मैं भी इससे खूब धन लूटता! गुरुवाणी में लिखा है :—

"हिये की आँख खोलो"

इस आंख खोलने का मतलब है कि वह राधास्वामी का रूप देख सके। मेरा रूप या हजूर बाबा साँवले शाह का रूप राधास्वामी का रूप नहीं हो सकता। राधास्वामी का वह रूप है जो तुम्हारे अन्दर में रहता है। वह इन दृश्यों को जो तुम्हारे अन्दर में उपजते हैं देखता है। अन्दर में तो शब्द होता है वह इसे सुनता है और प्रकाश को देखता है। वह तुम्हारी सुरत है। तुम स्वयं राधास्वामी दयाल हो। तुमको अपना पता नहीं है। यह सत्संग का कार्य मुझे इस वास्ते दिया गया है कि मैं अपने रूप को देख सकूँ।

डा० जगजीत सिंह लिखता है कि मैं (फकीरचन्द) दो बजे दिन में लन्दन गया। मैं इसे खूब जानता हुँ कि मैं लन्दन नहीं गया। मैं टप्पल भी नहीं गया, जैसा कि वह साधु जिस का कि वर्णन ऊपर किया है कहता है। सन्त ताराचन्द जैसा कि वह लिखता है कि मैंने इसके साथ मिलकर इसके चने काटे हैं। मैं कहता हूँ कि मैंने चने नहीं काटे इसके साथ। मैं दुःखियों के लिए संसार में आया हूँ। मैं भी किसी समय दःखी था। मैं दाता के दरबार में जाकर रोया करता था।

दाता ने दया की और मुझे भव सागर से पार कर दिया। उन्होंने मेरे अज्ञान को सँभाला है। तुम लोग मुझे तंग करते हो। मैंने भी अपने गुरुदेव को तंग किया था इसलिए अब मुझे भी तंग होना पड़ता है। यह प्रकृति का नियम है। मुझे प्रसन्नता है कि मैंने किसी को धोखा नहीं दिया और न चालाकी से ही काम लिया है। मैं जिनके घर ठहरता हूँ इनका टुकड़ा अवश्य खाता हूँ। वह मुझ से प्यार करते हैं प्रम करते हैं किन्तु मुझे इस का कोई दुःख नहीं है, कुछ न कुछ मुझे खाना तो है ही। कोई समय था जब मुझ में मान आ गया था सिद्धि शक्ति आ गई थी। मैं माया का अभिमानी हो गया था। सारी आयु मैं इसी माया में लिप्त रहा क्योंकि मैं उस समय अज्ञानी था। ज्ञान होने पर मेरा मान जाता रहा। गुरु-वाणी में ज्योति के हिंडोले का वर्णन आया है। यह क्या है? ज्योति निरंजन से सारी सृष्टि बनती है। जो लोग समाचार पत्र पढ़ते हैं उन्हें यह पता है कि विज्ञान क्या कहता है? साइंस कहती है कि एक बड़ा भारी सूर्य है जिसमें से (Cosmic rays) एक प्रकार की किरण इलेक्ट्रोन्स विद्युत-धारा प्रवाहित होती रहती है। वह ज्योति का झला है सारा जगत्। सृष्टि इसमें ही झूल रही है। सब लोग झूले में इतने मग्न हैं कि वह अपने आपे को भूले हुए हैं। दाता दयाल मुझे समय 2 पर चेताते रहे। उन्होंने मुझे चिताया यह चेतावनी दी कि मैं अपने आपे की ओर चलूं। वह रूप है जो मेरे अन्दर में रहता है। वह मन के विचारों तक का साक्षी है वह जो ज्योति प्रकाश या नूर को देखता है वह इसका भी साक्षी है। वह जो शब्द को सुनता है उसका भी साक्षी है। वही मेरा अपना रूप है इसको पहचानने के लिए बाहरी गुरु की सहायता की आवश्यकता होती है। मैं यह जानता हूँ कि इसके जानने के अधिकारी कोई-कोई होंगे। इसको जानते हुए भी मैं अपनी पुकार लगाता हूँ जिससे आने वाले समय

में कोई अधिकारी हो तो वह अपना कल्याण कर सके। यह गुरुजन होश में होकर बात करें और संसार के लोगों को न लूटें और न मूर्ख न बनायें। जो अधिकारी उन्हें दृष्ट में आवें उन्हें उचित मार्ग बतायें। यह है गुरु की महिमा जिसके विषय में मैं आप लोगों को कहता रहता हूँ। मैंने अपने कर्म-भोग वश इस अनुभव को कह दिया है। मुझे कैसे सच्चाई और वास्तविकता का पता चला है? आप लोग वहाँ जाने के इच्छुक नहीं हैं न इसे अनुभव ही करते हैं। आपको भौतिक पदार्थों की आवश्यकता है। भौतिक पदार्थ आपकी इच्छाओं के आधार हैं। किसी सीमा तक सांसारिक आवश्यकताओं को भी पूरा करना आवश्यक है। इन आवश्यकताओं के लिए तुम किसी एक का आश्रय लो और अपने मन को एकाग्र किया करो। मैं पूछता हूँ क्या देवी की उपासना से या राम को पूजा से सिद्धियां नहीं आती हैं। अवश्य आती हैं, अवश्य आती हैं। प्रारम्भ में बाल्यावस्था में मैं स्वयं राम का उपासक था। मैं राम का पुजारी था।

मैं नौकरी के समय में बांगांवाला रेलवे स्टेशन पर था। रामायण का नित्य पाठ किया करता था। वहां आर्य समाज के दो चार ओवरसियर थे जो राम व कृष्ण को गालियाँ देते थे। रामायण के पाठ के क्रम में मैंने अपने एक साथी भगवानदास से राय ली कि थोड़ा हलुवा बनाकर प्रसाद के रूप में लोगों में बांटूगा। भगवानदास ने कहा यह कोई हरज की बात नहीं है। मैं साधारण श्रेणी का आदमी था, धनी न था। मैंने थोड़ा सा हलुवा प्रसाद के लिए बनवा लिया किन्तु कठिनाई यह आन पड़ी कि तीन चार सौ व्यक्ति प्रसाद लेने को उपस्थित होगये। मैं इन दिनों रामभक्त था। मैंने राम को सच्चे मन से याद किया। प्रसाद सब में बाँटा गया। कई व्यक्तियों ने तीन-२ बार प्रसाद लिया, किंत राम की माया, प्रसाद समाप्त नहीं होता था। हमने

सबसे पूछा, जिसने प्रसाद न लिया हो वह ले ले। सबने ले लिया। जब प्रसाद पर से कपड़ा हटाया गया तब भी पात्र में कुछ हलवा था। इसमें क्या रहस्य है कि प्रसाद समाप्त नहीं होता था। यह कहा जा सकता है कि ऐ मानव! तेरा अपना आपा पूर्ण है। जिस की जैसी आशा होगी वह पूरी होती जायेगी। बस बात इतनी ही है कि आशा बलवती हो और काम में एकाग्रता हो तथा काम श्रद्धा व विश्वास से किया जावे। यदि तुम दुनिया चाहते हो तो वह भी तुम्हें प्राप्त होगी और यदि परमार्थ का विचार है तो वह भी तुम प्राप्त कर लोगे। सन्तों की तो शरण में वह व्यक्ति जावे जो भवसागर से पार जाना चाहता है। बस बात इतनी ही है कि मात्र एक इष्ट से सम्बन्ध रखा जाये। यह नहीं कि आज हनुमान की पूजा हो रही है, कल बाबा फकीर की पूजा की जा रही है परसों किसी और की पूजा की जा रही है। यह दशा एक दम गलत है। ऐसी स्थिति के लिए तो कहावत है कि 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' तुम लोग सोच-विचार कर काम किया करो।

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल
डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

मीरापुर, इलाहाबाद 13-2-85

शब्द

आँखों का तारा सबका सहारा, हित चित से तू प्यारा है ।
निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पति परिवारा है ।।
घट घट वासी आनन्द रासी, अविनाशी मंगलकारी ।
रोम रोम में रमता जोगी, रोग सोग से न्यारा है ।।
गुणातीत गोविन्द मुरारी; पुरुषोत्तम करुणा सागर ।
जन मन रंजन दोष विभंजन, प्रेम प्रीति भण्डारा है ।।
नाम लेत भव सिंध सुखावे, ध्यान धरत कलिमल जावे ।
भव दुख मेटन दोष नसावन, भक्ति रीति का सारा है ।।
करम धरम वैराग ज्ञान तत, विज्ञानी पूरा सच्चा ।
हे दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुखी हमारा है ।।
अब तो शरण में आन पड़ा हूँ, एक आस तेरी मुझ को ।
राधास्वामी चरन से प्रीति रहे नित, वही धुर इष्ट सहारा है ।।

गुरुदेव-जगद्-व्याप्तं, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्म कम् ।
गुरोः परतरं नहि किंचित्, तस्मै श्री गुरवे नमः ।।
मानवधर्मस्य धातारं, दाता दयालस्य प्रियतमय् ।
सन्तधर्मस्य गोप्तारं, फ़कीरं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप उपस्थित भाइयो और बहनो, इस युग में, जिसे कलियुग कहते हैं, एक विशेष महत्त्व यह है कि हर वस्तु सुगम और सहज है । चाहे वह

वस्तु हमारे भौतिक जीवन के लिये हो, चाहे वह बौद्धिक जीवन के लिये हो, चाहे आध्यात्मिक जीवन के लिये हो या रूहानियत के लिवे हो। जिस्मानियत, रूहानियत, बुद्धि, सभी इस युग में एक सहज रास्ता अपना रहे हैं। वैसे हमारे ऋषियों ने प्राचीन काल में जीवन को बहुत समन्वित (Iutegrated) बनाया, लेकिन उस समय हर चीज़ के लिये काफी समय देना पड़ता था। सिर्फ किसी एक विषय में ज्ञान प्राप्त करने लिये भी, जो उपनिषद् काल के विश्व-विद्यालय थे, उनमें बारह-बारह वर्ष स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के लिये व्यतीत करना पड़ता था। उपनिषद् में एक जगह पर एक कथा आती है कि एक शिष्य ब्रह्मचारी बारह वर्ष तक एक गुरु-आश्रम में रहा। उसे केवल व्याकरण में उपाधि लेनी थी। ऋषि-पत्नी सब को खाना खिलाती थी वह स्नातक विशेष कर अलग खाना खाता। बारह वर्ष की शिक्षा के बाद एक दिन गुरु ने कहा "आज तेरा काम समाप्त हो गया, तू स्नातक हो गया।" नित्य की भांति जब वह खाना खाने के लिये बैठा तो ऋषि-पत्नी ने खाना परोसा। खाते समय उसने कहा, "माता जी, आज आप सब्जी में नमक डालना शायद भूल गई।" ऋषि-पत्नी बोली, "बेटा, ऐसा लगता है कि आज तेरी शिक्षा समाप्त हो गई और तू स्नातक हो गया है।" ब्रह्मचारी बोला, "माता जी, नमक का स्नातक होने से क्या सम्बन्ध ?" माता बोली, "बेटे बारह साल तक तू यही खाना खाता रहा; मैंने कभी नमक नहीं डाला। तुझे होश ही नहीं रहती थी। आज तुझे होश हो गया कि भोजन में नमक नहीं पड़ा है।" वह समय था जब बौद्धिक शिक्षा लेने में भी इतना समय लगता था, रूहानियत का तो कहना ही क्या ! एक शिष्य गुरु के पास गया और प्रश्न किया "मैं कौन हूँ ?" यह सवाल हर इन्सान कभी न कभी ज़रूर उठाता है ज़िन्दगी में, खास कर जब उसकी और ज़रूरतें

पूरी हो जाती हैं और उन ज़रूरतों के पूरा हो जाने के बाद-
जूद भी मन में कुरेद होती है कि "मैं कौन हूँ ? आखिर मैं
पैदा हुआ, पढ़ा-लिखा, नौकरी की, शादी की, बच्चे पैदा
किये, पर इसके आगे क्या ?" सब दुःख-सुख से गुजरने के
बाद, यह सवाल पैदा होता है कि भई, यह सारा झगड़ा
आखिर है क्या ? यह एक बड़ा भारी सवाल है कि मालिक
जो अपने आप में पूर्ण है -'पूर्णमदः'- उसमें किसी चीज़ की
कमी नहीं, वह सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्व-व्यापक है,
सर्वाधार है, सारी सृष्टि उसी से निकली है, तो फिर उसने
यह अलखंजा क्यों खड़ा कर दिया ? सब कुछ वही है, आप
भी उसी के रूप हो लेकिन अपने आप को बिखेर कर उसने
एक अलखंजा खड़ा कर दिया जिस को देखो अपनी धुन में
लगा हुआ है। किसी को कोई फिक्र, किसी को कोई चिन्ता।
आखिर यह क्या है ? यह प्रश्न हर एक आदमी कभी-न-
कभी करता है। एक बार मेरी पत्नी ने भी मुझसे यह प्रश्न
किया कि यह संसार क्या है ? क्यों है ? इसकी क्या ज़रूरत
थी ? अगर यह नहीं होता तो ठीक नहीं था क्या ?" बड़े-
बड़े दार्शनिकों, भक्तों और ऋषियों ने इस पर विचार किया
आखिर में सब कहते हैं "स्वलीलया-मौज-यह सब उसकी
लीला, उसकी मौज है।" उसका वार-पार कोई नहीं पा
सकता :-

'अनादि तेरी अनन्त माया, जगत् को लीला दिखा रही है।'

यह सब लीला है उसकी। लीला का मतलब खेल है।
बच्चे खेलते हैं सारा दिन। उनसे पूछा जाये, "बच्चो ! तुम
क्यों खेलते हो ?" कोई जबाव नहीं। बस, खेलते हैं। खेलना
उनका स्वभाव है, इसलिये खेलते हैं। या यों कहिये कि बच्चों
के अन्दर अधिक शक्ति होती है। शिक्षा शास्त्र में प्राचुर्य
शक्ति का सिद्धान्त पढ़ाते हैं, जो ज़रूरत से अधिक शक्ति
(Surplus Energy) होती है, उसे खपाने के लिये। कई

और यह भी कह देते हैं कि मालिक की शक्ति अनन्त है, वह बाहर आ जाती है। यह जगत् उसके प्रायुर्य शक्ति ही धारा है, जिसको Abundance कहते हैं। इतनी शक्ति, इतनी सत्ता, इतना सत्-चित्-आनन्द कि वह बाहर आ जाता है। वेदों में भी इसको प्रवर्ग्य या ब्रह्मोज कहा। ब्रह्म इतना अधिक हो गया कि उबल पड़ा। यह सब व्याख्याएं हैं। ठीक है। लीला या खेल का कोई अलग लक्ष्य नहीं होता। वह स्वलक्ष्य है (Self Contained) है। उसका महत्त्व अपने आप में है। लेकिन यह उत्तर भी पूरी तरह सन्तोषजनक नहीं है। आखिर यह जो प्रवर्ग्य है, यह ब्रह्मोज है, प्राचुर्य या आधिक्य है, यह सब क्यों ? किसलिये ? दाता दयाल जी ने एक जगह बहुत ही सुन्दर व्याख्या लिखी है कि वह परमतत्त्व सर्वाधार एक ऐसा जौहर, एक ऐसा हीरा है, जिसकी किरणें जब निकलती हैं तो विकास होता है और जब वह अपनी किरणें समेट लेता है तो सब लीला समाप्त हो जाती है। इससे यह ज्ञान हो जाता है कि हम सब उसी परमतत्त्व सर्वाधार के अंश हैं, हम वही हैं। फिर सवाल उठता है कि यह किरणों का फूटना क्यों ? और हम इस स्थिति में दुःख क्यों उठाते हैं ? इस का एक ही जवाब है, वह यह कि हमारे जीवन के अनुभव से यह सिद्ध होता है कि किसी वस्तु का सही-सच्चा मूल्य और महत्त्व हमें उस समय समझ में आता है जब हम उससे अलग होते हैं। आप के घर में एक बूढ़ा है अस्सी नब्बे साल का, खाट पर पड़ा खांसता है, आप समझते हैं वह निकम्मा है, व्यर्थ है। मगर उसकी असली-सच्ची क़दर आप तब करते हो जब वह चला जाता है। मालिक ने हमें इस काल के जगत् में, अपने से अलग, फेंक दिया है। हम बिछुड़ गये हैं उस प्यारे प्रियतम से। यह प्रेममय जगत् उसने हमें प्रेम का अनुभव करने के लिये रचाया है। आप को विरह दिया ताकि इस जगत् में आकर, इस शरीर, मन और आत्मा

के अन्दर होते हुए भी तड़पते रहें। हम तड़प रहे हैं इसलिये कि हमारा प्रियतम हमें मिला नहीं। यह तड़प तब तक समाप्त नहीं हो सकती, जब तक कि उसके साथ हमारा प्यार का सीधा सम्बन्ध जुड़ नहीं जाता। इस विरह और प्रेममय जगत् में तपन करारी है। सब के अन्दर एक ज्वाला है। लेकिन पता नहीं है कि यह तड़प किसके लिये है। इस शरीर को भी स्वस्थ रखना चाहिए। शरीर के लिये जितने भी आनन्द के साधन हम जुटा सकते हैं, जुटाते हैं, लेकिन सब सुख-सुविधा की साधन-सामग्री होने के बावजूद हमारे मन को चैन नहीं। धन-दौलत, इज्जत और शोहरत के बावजूद सुख नहीं क्योंकि आत्मा तो कुछ और ही खोज रही है। मनुष्य की आत्मा तो कह रही है "मैं उस पूर्ण से बिछुड़ कर आई हूँ, पूर्ण में ही मिलूंगी। जब तक उस पूर्ण से सम्बन्ध नहीं जुड़ जाता, तब तक तड़पती रहूँगी।" यह जबाव है इस शाश्वत प्रश्न का इस समय। सवाल तो पहले भी थे। एक शिष्य गुरु के पास गया और प्रश्न किया, "मैं कौन हूँ? मेरा आधार क्या है? परमात्मा क्या है? आत्मा क्या है? ब्रह्म क्या है? आत्मा और ब्रह्म का मिलाप कैसे हो? संयोग कैसे हो?" उपनिषद् काल भी गुरु-शिष्य का काल था। दाता दयाल जी ने सभी उपनिषदों पर लिखा है। "मानव पूर्ण से निकला है, इसलिये पूर्ण है। अमृतस्य पुत्रः है।" जब बच्चा पैदा होता है, उसके कानों में यह मंत्र फूंका जाता है "शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनः।" पता नहीं अब यह रिवाज है या नहीं। इससे क्या होता है? जब ये शब्द बच्चे के कानों मे कहे जाते हैं तो उसके मन पर संस्कार की एक मुहर लग जाती है। बच्चे को यह कहा जाता है :-

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।'

तू पूर्ण से आया है, पूर्ण का पुत्र है। उस पूर्णात्पूर्ण के इस छोटे पूर्ण को जब जान लोगे तब सब जगह तुम्हें पूर्ण ही

दिखाई देने लगेगा :—

'जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू है ।
कि हर शै में जलवा, तेरा हू ब हू है ॥

सब रूपों में उसी प्यारे का रूप दिखाई देने लगता है। 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म'। निश्चित रूप से सब कुछ ब्रह्म ही है। कोई भी जगह उससे खाली नहीं है, कण-कण के अन्दर वह मौजूद है। जड़ पदार्थ में वह सो रहा है, वनस्पति में वह स्वप्न ले रहा है, पशु में वह चेतन है; मनुष्य में आत्म-चेतन है और सन्त में वह परम चेतन है। ये उसकी अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ (Degrees) हैं। ठीक है, मालिक सब जगह मौजूद है। कुछ भी तो नहीं जो उसके बिना ठहर सके। उसी से सब कुछ निकलता है, उसी में विकसित होता है और उसी में समाविष्ट हो जाता है लेकिन यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह जगत् ही पुर्ण परम ब्रह्म है। नहीं, यह जगत् तो सिर्फ उसका प्रवर्त्य, उसका ब्रह्मोज है, यह तो उसकी बूंद, उसकी धार है। इसलिए वह परमतत्त्व, जहाँ से हम आये हैं, जहाँ हम जा रहे हैं; उसके बारे में एक और बात कहना भी जरूरी है। क्या ? यह कि आप कहीं यह न समझ बैठें कि यह जगत् ही ब्रह्म है। यह जगत् तो ब्रह्म पर आधारित है, लेकिन ब्रह्म जगत् पर आधारित नहीं है। ब्रह्म इससे ऊँचा और बड़ा है। इसलिये कहीं बूंद को सिंधु समझ लेने की भूल न कर बैठना। बूंद सिंधु का अंश जरूर है, पर सिंधु नहीं है। वेदान्ती यही भूल कर बैठते हैं। वे कहते हैं "अहं ब्रह्मास्मि-मैं ब्रह्म हूं।" यह ठीक नहीं, मैं तो ब्रह्म का अंश हूं। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने से कोई सचमुच परमतत्त्व मालिक नहीं हो जाता। हम तो मालिक के अंश हैं। इसलिए इसको समझाने के लिये एक दूसरा पक्ष है। शिक्षा में एक भावात्मक (Positive) पक्ष होता है, दूसरा नकारात्मक (Negative) पक्ष। जैसे, यह चीज

ऐसी है, ऐसी नहीं है। कहीं गलती या भूल न कर बैठो, इस लिये परिहार-प्रक्रिया (Process of elimination) भी बतानी पड़ती है - यह हटा दो, यह हटा दो, शेष जो बच जाता है, वही परिहार-प्रक्रिया (Process of elimination) यह नकारात्मक (Negative) जा तरीका अभीष्ट है कि यह चीज ऐसी नहीं है, ताकि इनसे अलग उसको समझा जा सके। इस 'नहीं है' को कहने के लिये वह शैली थी कि वह जो परम तत्त्व है, परम ब्रह्म है, वह फूल नहीं है, पत्ती नहीं है, रंग नहीं है, रूप नहीं है, आकाश नहीं है। क्योंकि अगर परम तत्त्व फूल है तो पत्ती कहां से आई ? अगर पत्ती है तो आकाश कहाँ से आया ? अगर वह आकाश है तो प्रकाश कहाँ से आया ? इसलिये किसी चीज को उस परमतत्त्व के समकक्ष नहीं माना जा सकता। यह कहना कि 'नेति-नेति-नेति'—'यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं', इसका मतलब यह नहीं कि वह कुछ नहीं है। बल्कि इसका मतलब यह कि उसके मुकाबले या बराबर की कोई चीज है ही नहीं। सब कुछ उसी में है, लेकिन वह सबसे परे है। इसलिये 'नेति-२' कहा जाता है। 'नेति-नेति' कहने से कहीं भ्रम न हो जाये, इससे एक कदम और आगे लिया जाता है। बड़ी सूक्ष्म बात समझा रहा हूं। मूर्त भाषा से अमूर्त भाव समझा रहा हूं। भाषा मूर्त है, वह अमूर्त है। भाषा सीमित है, वह असीम है। लेकिन एक मिसाल देना जरूरी है। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं - आखिर ठहराव कहां है ? ठहराव जहाँ भी होगा, वह आधार होगा, जिस पर ठहरने के बाद सब प्रकार की हरकत या चंचलता समाप्त हो जाती है। ठहराव कहाँ है ? ठहराव तुम्हारे अन्दर में है। पहले यह समझना है कि यह जो मैं 'मैं' कह रहा हूं, वह मेरा असली 'मैं' क्या है ? क्या उसका कोई सबूत है ? दुनिया सबूत मांगती है। सबूत दिया जा सकता है। उसका सबूत है निश्चितता, उसका सबूत यह

है कि जिस चीज के समझने के लिये किसी भी प्रमाण की जरूरत नहीं है, वह स्वतः प्रमाण है। कैसे ? आप सब चीज को अनिश्चित मान कर चलो। कहीं पहुँचोगे जहाँ निश्चितता हो जायेगी। (हिन्दी में बोल रहा हूं क्योंकि यू० पी० में लोग हिन्दी बोलते-समझते हैं। पंजाब में गुलाबी हिन्दी बोलनी पड़ती है, वहाँ हिन्दी समझ नहीं पाते लोग।) तो अनिश्चितता से चलिये। मान लीजिये मैं शरीर को कहता हूं कि यह मेरा शरीर है। अरे भाई, शरीर तो छिन्न-भिन्न हो जायेगा। शरीर पर सन्देह किया जा सकता है। शरीर अनिश्चित है। मन भी अनिश्चित है। प्रकाश भी अनिश्चित है। यह पृथ्वी भी अनिश्चित है। आज सूर्य उदय हो रहा है, कल न हो ! सन्देह किया जा सकता है। सन्देह है मुझे। यह सन्देह है, यह सन्देह है, यह सन्देह है। आत्मा पर भी सन्देह, परमात्मा पर भी सन्देह, सब पर सन्देह। पर एक बात में सन्देह नहीं है कि मैं सन्देह कर रहा हूं। यह तो निश्चित है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंच चुका हूं कि सब चीज अनिश्चित है। सब चीज पर सन्देह है, लेकिन इस पर तो सन्देह नहीं कि मैं सन्देह कर रहा हूं। इस पर सन्देह नहीं किया जा सकता। लोग कहते हैं - "आत्मा दिखाओ, फूल की तरह आत्मा को दिखाओ।" यह फूल तो नहीं है। इस पर सन्देह किया जा सकता है। लेकिन क्या आप अपने आप पर कभी सन्देह कर सकते हो ? सन्देह करना ही प्रमाण है कि आपके अन्दर कोई चीज है। यह एक नुक्ता है। पहले तो उसको यह बताया कि यह सब तुम्हीं तो हो। फिर कहा कि नहीं, यह जगत् भी तो कुछ नहीं। वह तो इससे ऊँचा है। वह न आकाश है, न पाताल है, न प्रमाण है, न अप्रमाण है, न शक्ति है, न प्रकाश है, न अन्धकार है। नेति -नेति-नेति। कहीं जिज्ञासु इस 'नेति-नेति' के भ्रम में यह न समझ ले कि वह तो कुछ भी नहीं है। इसलिये पहले तो

कहा कि ऐसा है, फिर कहा "ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है।" फिर एक दम उसे कहा - "तत् त्वमसि" - अरे ! तुम वही हो क्योंकि तुम अपने आप पर सन्देह नहीं कर सकते। इसलिये मान लो कि वह भी तुम्हारी तरह निश्चित है। ऐसा ज्ञान देने के बाद उस शिष्य को कहा - "अब तेरी समझ में आ गया कि तू वह है। तू है, यह निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं। सवाल यह था कि मैं कौन हूं ? आत्मा क्या है ? आत्मा द्रष्टा है, देखने वाला है। वह देखा नहीं जा सकता, लेकिन उसके बिना देख नहीं सकते। वह सुना नहीं जा सकता, सुनना उस का खासा है। यह निश्चित है।" जब यह बता दिया कि वह ऐसा है, ऐसा नहीं है, फिर एकदम कहा - तत् त्वमसि। अरे, तुम वह हो। अपने आप पर क्या सन्देह करना।" वह जागृत हो गया। ऐसा बताने के बाद उसको कहा - "बात समझ आ गई ?" सवाल-जवाब किया, बुद्धि के तर्क-वितर्क से भ्रम दूर कर दिये। तीसरे कदम पर बात समझ में आ गई। पहला कदम था बताना। दूसरा कदम था बैठ कर उसे मनन करना और तीसरा कदम था निदि-ध्यासन। अन्त में उसको कहा - " अब जाओ, जाकर स्वयं अनुभव कर लो निदिध्यासन, ध्यान, समाधि से खुद आत्म-साक्षात्कार कर लो।" वह शिष्य गया और बारह वर्ष के बाद फिर आया। गुरु के पास पहुंचा। गुरु ने पूछा - क्यों भाई, कुछ ज्ञान हुआ ?" शिष्य बोला - हां महाराज, मैंने देख लिया, आप की बात सत्य है। जहां भी जाता हूं, फूलों में, पत्तों में, नदियों में, आकाश में, उसी का नजारा है। सब जगह वही है। घट-घट में वही विराजा है।" आधा घण्टा तक उसने अपना व्याख्यान दिया। गुरु ने कहा, "बेटे, अभी तेरी समझ में बात नहीं आई। बारह वर्ष और जाकर साधना कर।" शिष्य फिर गया और बारह साल बाद वह फिर आया और बोला, "गुरु जी, मैंने व्यर्थ उतनी लम्बी-

थोड़ी व्याख्या दी थी। वह सब जगह व्यापा है और सबसे परे भी है हमारे अन्दर भी है, बाहर भी है।" गुरु बोले, "पुत्र, बात तो ठीक कही तूने लेकिन पूरी तरह अभी समझ में नहीं आई। जा, बारह साल और साधना कर।" शिष्य चला गया। बारह साल की साधना के बाद जब वह तीसरी बार फिर आया तो गुरु को नमस्कार कर के चुपचाप बैठ गया। न शिष्य कुछ बोला और न गुरु ही कुछ बोले। पाँच मिनट तक बिलकुल शान्ति रही। तब गुरु जी बोले, "अब तू समझ गया कि असलियत क्या है। जहाँ सब तर्क-वितर्क और दलीलें खत्म हो जाती हैं, वहाँ अनुभव यह बता देता है कि :—

'बूंद पानी में मिला, दरिया बना क्या जुस्तजू।
ज़ात में जब मिल गया, फिर वह करे क्यों गुफ्तगू।।'

यह चालीस वर्ष की साधना पुराने युग की बात थी, लेकिन आज का युग तो तुरत युग (Instent age) है। Instent coffee, instent breakfast, हर चीज़ तुरत मिलनी चाहिए। अक्ल में भी, रूहानियत में भी आप देखें, आज जितना साहित्य है, हर विषय में जितनी सामग्री (matter) मिल रही है, कम्प्यूटर के ज़रिये, पहले कभी नहीं मिलती थी। आज एक मिनट में आप शेक्सपियर के बारे में जानना चाहते हैं तो बटन दबा दीजिये और कम्प्यूटर के ज़रिये एक मिनट में आप को सारी जानकारी मिल जायेगी। इसीलिए इस युग के वास्ते सन्तों का अवतार है। दाता दयाल जी का अवतार हुआ, परम दयाल जी का अवतार हुआ, क्योंकि यह सहज-युग है। इस युग में 'नाम' का आधार बताया है 'नाम' की भक्ति से सहज में ही उस परमतत्त्व का ज्ञान, और उसकी अनुभूति होती है। इसीलिए सन्तमत आया। राधास्वामी नाम में ही वह शक्ति, वह प्रभाव है जिसे पाने के लिए मनु-शतरूपा ने हजारों वर्ष तपस्या की।

'राधा' नाम आत्मा का है, और 'स्वामी' नाम है परमात्मा का। राधा धारा है, जगत् है, व्यापक सौन्दर्य है, सत्यम्-शिवम् सुन्दरम् है। यह सारा जगत् ही सत्यम् है लेकिन जहाँ से यह जगत् निकला, जो इसका आधार है, वह अनादि, अनन्त है, वह अनाम है, वह अविनाशी तत्त्व है। जगत् परिवर्तन-शील है वह परिवर्तनशील नहीं है। यह चल है, वह अचल है। यह गतिमान है, वह स्थिर-स्थाणु है। वह परमतत्त्व सर्वाधार स्वामी है, मालिक है। राधास्वामी का भी यही मतलब है। कोई फर्क नहीं। राधास्वामी किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। दाता दयाल जी ने अपने हर शब्द में 'राधा-स्वामी' नाम का प्रयोग किया है। आप देखें, उसका मतलब है ध्रुव, अचल, सर्वाधार, परमतत्त्व जो बारम्बार अवतार लेता है और ज्ञान देता है। वह ज्ञानदाता, राधास्वामी, अचल मुकामी है। राधास्वामी का मतलब ही लोक-परलोक दोनों है राधा है लोक को सुधारना, और स्वामी है परलोक का सुधारना। राधास्वामी दोनों का तारतम्य है(Identifi-cation) है। मालिके कुल का नाम भी राधास्वामी है जैसे, सीताराम, राधेश्याम आदि। स्वामी जी महाराज ने तो एक जगह पर कहा है -'राधा राधा है, स्वामी कृष्ण कन्हाई है।' इसलिए मैंने राधास्वामी से आरम्भ किया। सन्तमत में वही सब कुछ है जो उपनिषद् काल में भी था-श्रवण, मनन, निदिध्यासन। पहले सुनना अर्थात् सत्संग, फिर मनन अर्थात् सद्गुरु से प्रश्न करना। सत्संग है श्रवण, सद्गुरु है मनन और सत्तनाम है उसका अनुभव करना-उसमें विलीन हो जाना। अनुभव के बाद ही शिष्य कहता है कि सद्गुरु ने यह ठीक कहा था :-

'जब लग न देखो अपने नैना।
कभी न मानो गुरु के बैना॥'

बात सही है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं होना चाहिये कि आप गुरु से बड़े हो गये, शायद गुरु गलत हो। इसका

मतलब यह कि जब तक तुम निदिध्यासन के ज़रिये खुद अपने अनुभव में नहीं उतारोगे, तब तक तुम्हें गुरु की बात की सच्चाई का पता नहीं लग सकता। जब अपने अनुभव में उतार लोगे तब उस शिष्य की तरह जाकर गुरु को नमस्कार करोगे, क्योंकि वह सत्य है। कुछ लोग 'कभी न मानो गुरु के बैना' का अर्थ गलत समझते हैं। वे सोचते हैं कि गुरु ने कह दिया, पर इसे देखा जायेगा; जब मैं स्वयं अनुभव करूँगा तब मानूंगा। गुरु को भी एक तरफ फेंक दिया। यह बहुत बड़ी भूल है शिष्य की। सन्तमत की सब से बड़ी देन है सत्संग। सत्संग ही ज्ञान पाने का सब से सहज-सुगम तरीका है, क्योंकि वह जमाना तो अब रहा नहीं कि चौदह साल आश्रम में जा कर रहो। इसलिए उसको सुगम बनाने के लिए सन्तों ने इस समय में सत्संग का तरीका चलाया। सत्संग की महिमा है :—

'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा ॥'

सत्संग केवल पूर्ण पुरुष सद्गुरु का होना चाहिये, उसका नहीं जो किताबें पढ़-पढ़ कर किताबी ज्ञान उगल दे। सत्संग सब के लिए सुलभ है, चाहे वह किसी भी उम्र का क्यों न हो। किसी भी आध्यात्मिक ज्ञान के लिए यह ज़रूरी नहीं कि आप बूढ़े हो कर ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि भगवद्गीता संन्यासवाद है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। अर्जुन तो डर कर संन्यास लेने जा रहा था, पर भगवान कृष्ण ने उसे कहा-"नहीं, भागो नहीं। डट कर अपना कर्म करो।" गीता तो सहज समाधि, सहज-योग और सन्तमत का एक ख़ास नमूना है। यह सब के लिए है, सभी इस के अधिकारी हैं। सनातन धर्म में व्रत रखना, एकादशी-पूर्णिमा आदि का अनुष्ठान करने का मतलब तो कुछ और ही है। यह स्वास्थ्य को ठीक रखने के

लिए है । लेकिन अगर आप कहें कि एकादशी या पूर्णिमा का व्रत रखने और दान देने से ही मालिक मिल जाता है, ऐसी बात नहीं है :-

'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा ।'

वह मालिक सब के लिए और सब काल में सुलभ है । 'सदा दिवाली सन्त घर, आठों पहर आनन्द ।' यह मतलब है सत्संग का । यह जरूरी नहीं कि आपको काशी या हरिद्वार में ही मुक्ति मिलेगी । कबीर साहिब ने इसे अप्रमाणित कर दिया कि काशी में शरीर त्यागने से वैकुण्ठ मिलता है और मगहर में मरने से मनुष्य नरक में जाता है । उन्होंने काशी से मगहर जाकर अपना शरीर त्याग किया और कहा—

'जो कबिरा काशी मरे ती रामहिं कौन निहोर !'

काशी में मरने से मुक्ति मिली तो राम की बड़ाई क्या रही । उनके लिए राम स्वयं मगहर में प्रकट हुए और कबीर सशरीर परम धाम को गये । परम दयाल जी महाराज ने भी अमरीका के मर्सी हस्पताल (दया के अस्पताल) में जाकर शरीर छोड़ा । वह जितने दिन वहां रहे, उस अस्पताल के सारे मरीज ठीक होकर चले जाते थे । उनकी रेडियेशन का इतना भारी असर उन पर पड़ा । परम दयाल जी महाराज ने यह प्रमाणित कर दिया कि—

'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा ।'

वह मालिक सब देशों में, सब काल में है । सारा जगत उसी का ही तो है । अरे काल भी तो दयाल का ही है । नहीं तो काल कहाँ से आया ? काल में ही तुम को दयाल मिलेगा । काल नहीं हो तो दयाल मिल ही नहीं सकता ।

मानव शरीर इतना दुर्लभ और उत्तम है कि देवता भी लालायित रहते हैं । आप गृहस्थ में हो तो गृहस्थ का आनन्द भोगते हुए गृहस्थी में ही मालिक को देखो । पहले

मनुष्य से प्रेम करो। मनुष्य साक्षात् ईश्वर का रूप है। ईश्वर को देखना है तो मनुष्य में देखो।

'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥

महाराज जी का पार्थिव शरीर अमरीका से भारत आया एक बार उन्होंने पूछा—"अगर मैं यहाँ अमरीका में मरूँ तो मेरा शरीर भारत ले जाने में क्या कठिनाई आयेगी?" कहीं कोई कठिनाई नहीं आई। यह सब उनको लीला थी। और भी कई सन्त विदेश में मरे। योगानन्द जी भी विदेश में मरे, लेकिन वहीं के वहीं रह गये। ऐसी मिसाल अब तक सिर्फ एक ही है कि कोई सन्त अमरीका में प्राण त्यागे और उसका शरीर स्वदेश में वापस आवे। परम दयाल जी महाराज का शरीर भी इतना दिव्य कि जब तक समाधि में रहे, वैसी क्रान्ति, उतना तेज मैंने जीवन में नहीं देखा, जो दिनों दिन दिव्य से दिव्यतर ही होता चला गया। मानवता मन्दिर में जब अंतिम संस्कार होने लगा, और भीषण गर्मी की ज्वाला से सब लोग तिलमिला रहे थे, उसी समय अचानक मन्दिर के ऊपर एक बादल आया और जल-वर्षा से भीषण ज्वाला शान्त हो गई।

परम दयाल जी महाराज ने अपने सत्संगों के प्रभाव से देश-विदेश और पूर्व-पश्चिम का भेद भाव मिटा दिया। जो परमतत्त्व में विलीन हो गया उसके लिए सारा विश्व और मानव मात्र एक समान है। ऐसे सन्त सद्गुरु का सत्संग भी 'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा' यह नहीं कि जब पंडित जी खास पूर्णमासी के दिन ही आयेंगे तो कथा सुनायें गे। मुझे तो आप उधर ढूढ़ने गए और मैं यहाँ पहले ही पहुँच गया। आप एक कदम मालिक की तरफ चलें तो मालिक सौ कदम आप की तरफ चला आता है। सत्संग की यह

महिमा है। लेकिन इसके लिए शर्त है :—

'सेवत सादर समन कलेसा।'

दु:ख-क्लेश तो कई तरह के हैं, पर इनसे बचने का उपाय सिर्फ एक है। सत्संग को आदर पूर्वक सुने। चाहे शरीर का दु:ख हो, चाहे मन की चिंता हो, या मृत्यु का भय हो, सत्संग में जा कर आदर के साथ, अदब से बैठ कर सुनने से आप के सभी दु:ख-क्लेश समाप्त हो जायेंगे। उनका शमन होगा, पर दमन नहीं। दमन का मतलब बलपूर्वक जबरदस्ती सत्संग तो सहज मार्ग है। इसमें आसन मारने, स्वांसा चढ़ाने या काया को कष्ट देने की कोई ज़रूरत नहीं। दिल से आदर किया और ज्यों झुके नहीं कि आप का सारा क्लेश दूर हो गया। सत्संग में क्या मिलता है? सत्संग में आदर के साथ बैठने से नाम की प्राप्ति होती है। नाम के प्राप्त होने से और नाम की भक्ति से बाकी सारे काम अपने आप ही पूरे हो जाते हैं। सत्संग में आने से आप को यह पता चल जाता है कि हम सब कहाँ से आये हैं, कहाँ जायेंगे?

आज का जो शब्द दाता दयाल जी का पढ़ा गया है, उसके अन्दर सारा भेद छिपा हुआ है कि वह रोम-रोम में रमता योगी कहाँ है! इस शब्द के आधार पर मैं आप को थोड़ी व्याख्या दूंगा :—

आँखों का नारा सबका सहारा, हित चित से तू प्यारा है।
निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पति परिवारा ॥

'आँखों का तारा' कौन होता है? नवजात शिशु माँ-बाप को प्यारा होता है। बच्चे हमें प्यारे हैं, पत्नी प्यारी है, पोता प्यारा है। ये हमें क्यों प्यारे हैं? प्यारे इसलिए हैं कि यह सब आत्मा हैं। प्यार आत्मा से आत्मा का होता है। 'आँखों का तारा' वही है जो हर एक के अन्दर मौजूद है।

पति-पत्नी एक दूसरे को उनकी आत्मा के लिए प्यार करते हैं ! आत्मा ही शरीर और मन का सहारा है। और आत्मा उस सर्वाधार का अंश है जो सब का सहारा है, सब की 'आंखों का तारा' है। तुम समझ रहे हो कि तुम शरीर से प्यार करते हो। लेकिन नहीं, तुम प्यार इसलिए कर रहे हो कि वह सर्वाधार जो तुम्हारे अन्दर है, वह उसके अन्दर भी है। वही सर्वाधार सब के अन्दर मौजूद है। ऐ सर्वाधार मालिक, 'हित चित से तू प्यारा है।' हे मेरे प्यारे ! मैं भूल गया था कि मैं तुझसे ही निकला और तुझ में ही वापस आना है। मैं भूल गया था कि तू सब के अन्दर मौजूद है। मैं भूल से इनको शरीर और मन मान बैठा, जिसका नतीजा यह हुआ कि मैं इन पर क्रोध कर बैठा। मैंने यह नहीं देखा कि असली 'आंखों का तारा' तो उनका शरीर नहीं, मन नहीं बल्कि इनसे परे है। चाहे मेरी पत्नी भले ही मुझ पर क्रोध करे, क्योंकि वह रक्त-चाप है (blood pressure) की मरीज है, पर उसके प्रति मेरा प्यार तो इसलिए है कि उसके अन्दर वही 'आंखों का तारा' मौजूद है जो सब की 'आंखों का तारा, सब का सहारा, हित-चित से प्यारा है। हम भूल कर हित-चित से प्यार कर बैठते हैं मकानों से, टेलीविजन से, मोटरकार से, पैसे से। लेकिन हमारा हित चित से प्यार तो प्यारे से होना चाहिये जो सदा सब पर अपना प्यार बरसाता है :-

'निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पति परिवारा है।'

हम सुख-सम्पत्ति ढूंढ़ते हैं भौतिक जगत् में। यह भी होना चाहिए। लेकिन असल में निर्मल वह है जिसके अन्दर किसी प्रकार का मल नहीं है, जो सदा शुद्ध है। वह न शरीर है, न मन है, न आत्मा है, न प्रकाश है। वह बुद्ध है, हितकारी है। हमारा सच्चा हित तो उससे ही है। जब उसको पा लिया तो आपकी आत्मा भी चमक उठेगी, मन भी

को नष्ट कर देता है।

पुरुषोतम आत्मा से परे परमतत्त्व का नाम है जो करुणा का अनन्त भण्डार है। उसकी करुणा अपरम्पार है। उसकी दया की अनन्त धारा अपने आप बहती है। जब उसकी ओर आपका ध्यान गया और उससे आप की लौ लग गई तो बाकी चीजें अपने आप होती चली जाती हैं। जनमन रंजन पुरुषोत्तम सब को आनन्द देने वाला है। भगवान कृष्ण लँगोटी-धारी नहीं थे। वे तो सोने और हीरे जवाहरात के आभूषणों से सुसज्जित पीताम्बरधारी थे। अरे यह जगत भी आनन्द-मय है। फिर दोष-विभंजन; कहीं भी कोई दोष आ जाए तो उसको तुरत दूर कर देने वाला है। उस प्रेममय पुरुषोतम ने प्रेम के लिए यह सारा जगत् बनाया ताकि तुम प्रेम के रास्ते पर चलते हुए, मालिक से विरह का अनुभव कर के, उससे मिलने के लिए व्याकुल हो उठो। जब उसके प्रेम में पूरी तरह दीवाने हो जाओगे, तब वह अपने आप कसी न किसी रूप में तुम्हें मिल जायेगा।

'नाम लेत भव सिंधु सुखाबे, ध्यान धरत कलिमल जावे'
भव दुख मेटन दोष नसावन, भक्ति रीति का सारा है।'

नाम लेने का मतलब मुँह से नाम का उच्चारण करना नहीं है, बल्कि नाम-तत्त्व में स्वयं घुल-मिल जाना है। सुरत-शब्द योग में आप बड़ी आसानी से शब्द को प्रकट कर लेते हैं। मीरा ने पत्थर की मूर्ति को परमतत्त्व मान कर उसकी भक्ति की। यह सन्तमत की महिमा है। मीरा के मुकाबले का सन्त बताओ मुझे! मीरा ने कृष्ण - भक्ति को साध लिया "गिरधर गोपाल ही मेरा पति-मेरा सर्वस्व है।" इस प्रेम को मीरा ने ऐसा साधा-ऐसा साधा कि बस परमतत्त्व में विलीन हो गई। सशरीर गुप्त हो गई। तो नाम लेने का मतलब है नाम को इतना साधना इतना साधना कि सब जगह वही दिखाई देने लगे। फिर भवसागर अपने आप

सूख जाएगा। परसमत्त्व स्वरूप सद्गुरु का ध्यान धरो; मन शुद्ध स्थिर हो जाएगा और वातावरण के सारे प्रदूषण हट जायेंगे। हम ऐसे मालिक की पूजा करते हैं, उसे प्यार करते हैं, जो हर प्रकार के द्वंद्वात्मक जगत् से हटा कर हमें भक्ति के पंथ में आगे से आगे ले जाता है। भक्त वह है जो विभक्त नहीं है, जो उस मालिक से मिलकर एक हो गया है। यही भक्ति-रीति का सारांश, उसका निचोड़ और उसका इत्र है-

'करम धरम वैराग ज्ञान तत, विज्ञानी पूरा सच्चा।
हे दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुखी हमारा है॥'

कर्म, धर्म, वैराग्य और ज्ञान तत्त्व-यह सब कुछ ठीक है, लेकिन कर्म का रास्ता कठिन है और धर्म में भी अनेक मत-मतान्तर हैं। बस एक ही रास्ता सब से सरल सुगम है, वह है सत्संग का सहज मार्ग।

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'

परहित का धर्मपालन करने से वैराग्य और ज्ञान तत्त्व अपने आप ही मिल जाते हैं। जब उस मालिक से लौ लगा लिया, फिर और कुछ करने की जरूरत नहीं। बस मालिक से प्रेमपूर्वक विनती करो-"हे दयाल, तुम्हीं सब कुछ हो, सब के आधार हो अब दया की दृष्टि करो। हमारा हृदय अति दुखी हो गया है।" मैंने अभी आप को बताया कि वह मंगल है। फिर दुःखी होने का तो कोई कारण नहीं जान पड़ता फिर भी हम दुःखी रहते हैं। इसीलिए सत्संग करना जरूरी है। हृदय इसीलिए दुःखी नहीं है कि आप को एक मंगलकारी सत्संग दिया जाये बल्कि हृदय इसलिए दुःखी है कि हम यह भूल गये हैं कि हम परमतत्त्व हैं। हम जगत् में आकर अपने सर्वाधार प्रियतम के विरह में दुःखी हो कर तड़प रहे हैं। अगर तड़प नहीं है तो वह अभी मोह में भूला हुआ है। वह दुःखी नहीं है। तड़प के कारण ही 'हृदय दुःखी हमारा है।' प्रियतम से विछोह के कारण ही हम दुःखी हैं —

'तू तो थी सत्तपुरुष की अंशी,
गोत लजाया शर्म न आई।'

अरे ! क्या तुम भूल गये कि तुम तो शेर हो ! तुम अपने रूप को ही भूल बैठे ? तुम अपने आप को गीदड़ समझ बैठे हो। हृदय दुःखी तो उसका ही होगा जो जानता है कि वह पूर्ण था, और पूर्ण पुरुष से अलग होने के कारण ही वह दुखी है। जब तक हम दुःखी नहीं होते, उससे मिलने को बेचैन नहीं होते, तब तक उससे हमारा मिलाप नहीं होता।

'दिल वो दिल है जो हर घड़ी हर पल
यादे — जाना में बेकरार रहे।
आँख वो आँख है जो शामो सहर
गमे फुर्कत में अश्कबार रहे॥'

जो मालिक के लिए नहीं रोता वह प्रेमी इन्सान नहीं है।

'अब तो शरण में आन पड़ा हूं, एक आश तेरी मुझको।
राधास्वामी चरन से प्रीत रहे नित, वही धुर इष्ट सहारा है।

अब तो मालिक के शरण में आन पड़ा हूं। अब दुनिया की सब चीजें, जो पहले अच्छी लगती थीं, फीकी और दुःखदायी लगती हैं। अब सब कुछ त्याग कर मालिक से एक ही प्रार्थना है कि मालिक, मेरा यह मन आपके प्रकाशमय चरणों में लीन हो, क्योंकि 'प्रकाशमय चरण' ही ध्रुव [illegible] तक पहुंचने का एक मात्र सहारा है। इष्ट तो उससे [illegible] इष्ट तक पहुंचने का सहारा यही है कि मैं [illegible] प्रियतम का रूप देखूं :-

'जधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
कि हर शै म जलवा तेरा हू ब हू है।'

अब मैं तेरी चरण-शरण में आ गया, अब तो मेरी यह स्थिति है कि सब के अन्दर तेरा ही रूप दिखाई देता है :-

'जो सब को तुम्हीं में, तुम्हें सब में देखे,
वो आशिक है तेरा, और माशूक तू है।'

अब मैं यही चाहता हूं कि मेरी यही हालत सदा बनी रहे, तेरे सिवाय कुछ भी दिखाई न दे।

' यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥"

भगवान् कृष्ण ने स्वयं कह दिया अर्जुन से कि जो मुझे ही सब जगह देखता है और सबको मुझमें देखता है उसके लिए मैं सदा उपस्थित रहता हूं, और वह मेरे लिए सदा उपस्थित है। बात जहां से शुरू हुई थी, अन्त में फिर वहीं आ गये। आज का सत्संग शुरू भी इसी बात से हुआ और समाप्त भी इसी बात पर हो रहा है कि सब जगह वह प्यारा दिखाई देता है, जो मांम् पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।' और सभी को मुझ में देखता है—'अहं त्वं न प्रणश्यामि।' बांह पकड़ ली, अब नहीं छोड़ूंगा, अलग नहीं होऊँगा। वह कभी मुझ से अलग होता ही नहीं। यही प्रार्थना की गई है कि हे मालिक, भक्ति की, सम दृष्टि की, संयोग की, ब्रह्म-दृष्टि की यह जो स्थिति है; कि सब जगह मैं तुम्हें देखूं; मेरी यही दशा सदा बनी रहे। यही मेरा सहारा है। बाकी सब संसार के सहारे छूट गये।

'सूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलना होय।'

सूली का मतलब क्या ? जब किसी को सूली पर लटकाते तो उसके हाथ बांध देते हैं और पैरों के नीचे से सहारा [illegible]ते हैं। वह बेसहारा हो जाता है। सूली का मतलब [illegible]े छोड देना।

[illegible] को तोड़ दो।'

(पत्र श्री अमर सिंह जी, अलावलपुर)

दयाल स्वरूप हज़ूर मानव दयाल जी महाराज,

अलावलपुर
27-7-47

राधास्वामी ।

हज़ूर, मैं एक किताब पढ़ बैठा हूँ। एक शक है जो मेरे दिमाग़ पर बहुत असर अन्दाज़ हो कर मेरी बुद्धि को मुन्तशिर किये हुए है। कहते हैं हमारी आत्मा की जो देखने की शक्ति है, उसको महात्मा निरत कहते हैं; जो सुनने की शक्ति है उसको सुरत कहते हैं। सुरत ने शब्द की आवाज़ को सुनना है, निरत ने उसी के प्रकाश को देखना है।

हज़ूर, मैं ऐसा सोजता हूँ कि सुरत के मुताल्लिक ग़लत फ़हमियाँ पैदा की गई हैं। कभी इसको आत्मा भी कह देते हैं, कभी इस को ज़ीवात्मा कह देते हैं। मैं समझता हूँ, आत्मा के ऊपर सुरत का मण्डल आता है जिसके तीन मण्डल हैं अलख, अगम, अनामी और ऊपर दयाल है। सतलोक जीवात्माओं का मण्डल है जो सारी कायनात को कंट्रोल करने वाली चीज़ कायनात में रम रही है, वही सुरत है, शक्ति रूप है, मालिके कुल की धार है। निरत सुरत की वह अवस्था है जब वह ऊपर को चढ़ती हुई ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है जब सब ग़िलाफ़ या पर्दे उतर जाने हैं, वह [illegible] निरत कहलाती है।

अगर मैं ठीक हूँ तो भी लिख दें, ग़लत [illegible] जवाब दें। मैंने [illegible]

सब क।

←O→

ए। मेरा अन्त:
चलने नहीं देता।
मैं कुछ सुझाव, यानि

उम्मीद है आप मेरे खत का जवाब देकर मेरा हौसला अफ़ज़ाई करेंगे।

आप का
अमर सिंह

पत्र द्वारा सत्संग

(उत्तर परम सन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज)

मानवता मन्दिर,
होशियारपुर
28-7-87

मेरे प्यारे मेरी आत्मा के स्वरूप अमर सिंह,
राधास्वामी परम दयाल जी सहाय।

आपका बहुत ही प्यारा खत आज ही मुझे मिला। आप ने सुरत और निरत के बारे में बिलकुल ठीक लिखा है। मुझे इस बात की खुशी है कि आप ने मेरे सत्संगों के सार को समझ लिया है। यह समझ सिर्फ उसे आ सकती हैं जिसको अनुभव हुआ हो और जिस पर राधास्वामी दयाल की मेहर हो। सुरत इस जगत् में रहती हुई भी मालिके कुल की धार है। इस लिये इसका मण्डल शरीर, मन और आत्मा से परे है। मैं ...नुभव से पूरी तरह सहमत हूँ। स्वामी जी महाराज

...मन थिर सुरत निरत थिर।'

...है कि तन-मन से ऊपर जब जीवात्मा

जब वह सत्लोक से ऊपर चली जाती है। हम इस अनामी अवस्था को निरत कह सकते हैं। लेकिन जब तक हम अनामी कहते हैं, तब तक वह निरत ही रहती है। इससे आगे की जो हालत है वह दयाल में मिल जाने की अवस्था है, जिसके बारे में सन्त चुप साध लेते हैं। मैंने इस हालत को अरत कह दिया है। इस नये अनामी नाम को सिर्फ समझा जा सकता है और इसका अनुभव किया जा सकता है।

आप के कहने के मुताबिक हम सुरत के स्वरूप पर एक किताब लिखेंगे और वह सभी ज़बानों में छपवाई जायेगी। हम "मानव मन्दिर" रसाले को भी नया रूप देंगे। आप जब आओगे तब आप से कुछ और बातें करनी हैं।

आप को मेरा दिली अशीर्वाद।

आप का फकीरमय
मानव

(पत्र-प्रतिलिपि श्री राजेश कुमार गुप्ता)

देहरादून - 3-8-1987

परम पूजनीय मालिके कुल पूर्ण धनी मेरी आत्मा के स्वामी मेरे प्राणाधार,

आपके-कमल चरणों में शीश झुका...

दास का कोटि...

मेरे सद्गुरु जी महाराज, परम... धार असीम गति से बह रही है औ... मेरे इर्द-गिर्द होने...